IJAER/ March-April 2024/Volume-13/Issue-2 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research
(Peer-Reviewed, Open Access, Fully Refereed International Journal) Impact Factor:7.06

# मुगलकालीन राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक स्थिति

*Khushboo Chaudhary, M.A. History, (UGC-NET).*

*Mail.ID: chaudharykhushboo0015@gmail.com*

**1.1 प्रस्तावना**

भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना से सामाजिक स्थिति में भी महत्वपूर्ण बदलाव आये। सल्तनत काल में इस्लाम धर्म राज्य का एक विशेष अंग था और उसमें उलेमाओं का प्रभुत्व था। समाज दो प्रमुख धर्मो हिन्दू और मुस्लिम में बंटा हुआ था। मुस्लिम जाति शासक वर्ग थी। अतः इन्हें विशेष अधिकारी और सुविधाएं प्राप्त थी। वे अधिकतर सेना और प्रशासन में लगे हुए थे। मुसलमान सुन्नी और शिया में बंटे हुए थे। जो हिन्दू मुसलमान धर्म अपनाते थे, उन्हें प्रशासन में ऊँचे पद दिये जाते थे और वह अपने को हिन्दुओं से ऊपर समझते थे। फिरोज तुगलक और सिकन्दर लोदी ने धर्म परिवर्तन को विशेष प्रोत्साहन दिया। दूसरी तरफ उच्चवर्गीय हिन्दुओं के तिरस्कार से भी विवश होकर निम्न जाति के हिन्दुओं ने धर्म परिवर्तन किया। हिन्दुओं के साथ एक लम्बे सम्पर्क से मुस्लिम समाज भी प्रभावित हुआ। जो हिन्दु मुसलमान बने थे, उन्होंने अपने अन्धविष्वासों को नहीं छोड़ा। हम देखते है कि फिरोज तुगलक को कई बार आदेश देना पड़ा कि मुसलमान स्त्रियां फकीरों की कब्रों पर फूलमालाएं चढ़ाने नहीं जाये। मुसलमान भोग–विलासी हो गये, जिसके कारण उनकी शक्ति भी उत्तरोत्तर कम होती गयी।[1]

हिन्दू समाज अनेक जातियों और उपजातियों में बंटा हुआ था। विभिन्न जातियों में प्रेम और मेल–मिलाप की कमी थी। अछूतों की दशा विशेष रूप से शोचनीय थी। उन्हें स्पर्श करना और उनके साथ अन्न–जल ग्रहण करनो धर्म–विरूद्व समझा जाता था। उनके धर्म ग्रन्थों को पढ़ने का अधिकारी छीन लिया गया और उनका मन्दिर–प्रवेश वर्जित कर दिया गया। हिन्दुओं में बाल–विवाह, सती प्रथा आदि अनेक कुरीतियां थी। उच्च जातियों एवं सम्भ्रान्त परिवारों में सती प्रथा विशेष रूप से प्रचलित थी। विधवाओं को उनकी इच्छा के विरूद्व पति के शव के साथ जिन्दा जला दिया जाता था। पुर्तगाल–निवासी बारबोसा विजयनगर राज्य में सती प्रथा का वर्णन करते हुए बताता है कि सती प्रथा यहां इतनी प्रचलित है और समाज में उसे इतने आदर के साथ देखा जाता है कि जब राजा की मृत्यु होती है तब चार सौ या पांच सौ रानियां राजा के शव के साथ सती हो जाती है। बारबोसा ने सती होने के ढंग का बड़ा हृदय–विदारक वर्णन किया है।[2]

उस समय स्त्रियों की स्थिति असन्तोषजनक थी। केवल कुछ उच्चवर्गीय स्त्रियों को छोड़कर स्त्रियों में उच्च शिक्षा का अभाव था। बाल–विवाह की प्रथा से उनकी शिक्षा पर बुरा प्रभाव पड़ा विधवाओं के पुनर्विवाह की समाजा द्वारा अनुमति नहीं थी। मुसलमानों के आगम से हिन्दुओं में पर्दे की प्रथा का प्रचलन बहुत बढ़ गया। लड़कों की तुलना में लड़कियों की स्थिति कमजोर थी। पुत्र के होने पर परिवार में उत्सव मनाया जाता था, जबकि पुत्री होना दुख का विषय था। राजपूतों के कहीं–कहीं कन्यावध की कुप्रथा भी विद्यमान थी। राजघरानों और धनाढ्य वर्ग के लोगों को छोड़कर अधिकांश हिन्दू केवल एक ही पत्नी रखते थे। इस कारण उनका घरेलू जीवन शान्तिपूर्ण था। हिन्दू परिवार में स्त्री को अपेक्षाकृत आदरपूर्ण स्थान प्राप्त था। दूसरी तरफ मुस्लिम परिवारों में स्त्रियों को हिन्दुओं की अपेक्षा कम सम्मान था। मुसलमानों में सामान्य लोगों में भी बहु–विवाह प्रचलित था। राजघरानों और अमीर वर्ग के लोग अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार कितनी भी औरते रखने का अधिकार था। मुसलमानों में पर्दे की प्रथा बहुत कठोर थी। समाज मुख्य रूप से दो वर्गो में बंटा हुआ था– उच्च वर्ग एवं साधारण वर्ग। प्रथम वर्ग में सामन्त, दरबारी, काजी, उलेमा, आलिम, शेख, सूफी पण्डित और भूमिपति थे। समाज का यह बुद्विजीवी वर्ग भी था। इस वर्ग के हाथों में सारे अधिकारी थे और यह सब सुविधाओं का उपभोग करता था। सुल्तान और उसके सामन्त शराब और विलासता में डूबे रहते थे। यह उच्च वर्ग संख्या में बहुत कम था। बहुसंख्यक साधारण वर्ग के लोगों का जीवन सादा एवं आडम्बर से दूर था। समाज में दास प्रथा प्रचलित थी। सुल्तान और उसके दरबारी दास रखते थे। दासों को खरीदा एवं बेचा जाता था।

हिन्दू और मुसलमान दोनों ने एक साथ रहते–रहते एक–दूसरे को समझने का प्रयास किया। हिन्दू और मुसलमानों के बीच की दूरी को कम करने में तत्कालीन समाज सुधारकों ने महत्वपूर्ण कार्य किया। कबीर (पन्द्रहवी शताब्दी के प्रथम ढाई दशक) और नानक (1469–1538 ई0) ने विशेष रूप से हिन्दू मुस्लिम एकता की आवष्यकता पर जोर दिया। हिन्दू और मुस्लिम दोनों धर्मो के लोग उनके अनुयायी थे। कबीर ने मुख्य रूप से दोनों धर्मो की कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया। कबीर ने दोनों धर्मो के बाह्य

[1] के0एम0 अशरफ, लाइफ एण्ड कण्डीशन ऑफ दे पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, दिल्ली, 1959, पेज–165

[2] डब्ल्यू0एच0 मोरलैण्ड, दि अग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुस्लिम इण्डिया, कैम्ब्रिज 1929, पेज–84

आचरण का अस्वीकार कर राम और रही की एकता को सिद्व करने का प्रयत्न किया। उन्होंने हिन्दू–मुस्लिम धर्मो को समानता के लिए बहुत बड़ा कार्य किया। भक्ति आन्दोलन के फलस्वरूप पहली बार हिन्दू तथा मुसलमानों ने परस्पर एक–दूसरे के निकट आने तथा समझने का प्रयास किया। इस्लाम धर्म के अन्तर्गत सूफी सन्तों ने भक्ति धारा के सन्तों के उद्देष्य के साथ एक मत होकर उपदेश दिया। भक्ति आन्दोलन द्वारा प्रान्तीय और स्थानीय भाषाओं विशेष कर बंगला, हिन्दी, मराठी और मैथिली के विकास में बहुत प्रोत्साहन मिला। इस युग में इन भाषाओं में बहुत–सी रचनाएं लिखी गई, जिन्हें उच्च कोटि की कृति माना जाता है।[3]

इस्लाम धर्म ग्रहण करने वाले यहां के लोगों की संख्या का विकास हो रहा था। युद्व और शान्ति के समय तथा शासन सम्बन्धी राजकायों में सहयोग देने के कारण यहां की जनता और शासक वर्ग के लोगों में एक–दूसरे को समझने और परस्पर निकट आने का अवसर मिला। दिल्ली की अपेक्षा अन्य प्रान्तीय राज्यों में इस प्रकार के भाई–चारे का अधिक विकास हो रहा था, विशेष रूप से कश्मीर और बंगाल में। यहां के सुल्तान धार्मिक सहिष्णुता और संस्कृत तथा अन्य आधुनिक भाषाओं के संरक्षण की नीति अपना रहे थे। कश्मीर के सुल्तान जैनुल आबेदीन ने अनेक निर्वासित ब्राह्राण परिवारों को वापिस बुलवाया। उसने अनेक विद्वान पंडितों को अपने दरबार में आश्रय दिया, जिन्हें धर्म की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। उसके दरबार में संस्कृत और हिन्दी के अनेक विद्वान रहते थे तथा लोग समानता का जीवन व्यतीत कर रहे थे।

### 1.2 **सामाजिक पृष्ठभूमि**

मुगलकालीन भारत का भौगोलिक विस्तार पष्चिम में हिन्दुकुश पर्वत–मालाओं से पूर्व में आसाम की पहाड़ियों तक और उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक था। इन दिनों देश में आवागमन के आधुनिक साधनों का सर्वथा अभाव था और देश मे ंबहुत कम ऐसे राजमार्ग थे जिनमें भिन्न–भिन्न शहरों के बीच सहत आवागमन किया जा सके। तत्कलीन मुख्य राजपथों में ग्रैडट्रंक रोड ढाका और लाहौर को जोड़ते थे, आगरा से असीरगढ़ तक का राजपथ, आगरा से अहमदाबाद तक का राजपथ तथा लाहौर से मुलतान को जोड़ने वाला राजपथ मुख्य थे। ये मार्ग देश के अनेक प्रसिद्व नगरों से होकर जाते थे। अतः इनका महत्व काफी था। नदी–मार्गो से भी यात्रा, व्यापार आदि किये जाते थे। देश में आजकल की तुलना में जंगल अधिक थे। उन दिनों भारतीय नगरों में दिल्ली, आगरा, फतेहपुर सीकरी, मुलतान, लाहौर, अहमदाबाद, उज्जैन, अजमेर, इलाहाबाद, बनारस, पटना, मथुरा, राजमहल, अटक, धौलपुर, ग्वालियर आदि समृद्व थे। किन्तु शहरों की तुलना में गांवों की बहुतायत थी जो आज भी प्रसिद्व है।

तत्कालीन भारत की जनसंख्या आज की तुलना में काफी कम, लगभग बारह करोड़ थी। देश का अधिकांश क्षेत्र वनाच्छादित एवं निर्जन था। भारत के उत्तरी क्षेत्र में गंगा और यमुना की घाटी में सघन आबादी थी। राजस्थान एवं सिन्ध में जनसंख्या काफी कम थी और दक्षिण में सिन्ध की पहाड़ियों से लेकर कन्याकुमार तक असघन रूप से लोग निवास करते थे। इस काल में भारत की जनसंख्या के सामाजिक स्तर का चित्र असामान्य रूप से मिश्रित था। इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएं थी। प्रथम, प्रत्येक क्षेत्र में भिन्न–भिन्न जातीय जटिलताएं थी। यह ठीक है कि कुछ जातियां सम्पूर्ण देश में पायी जाती थी, किन्तु उनके बीच पूर्ण समरूपता नहीं थी। द्वितीय, सम व नाप से सम्बोधित किये जाने पर भी अनेक जातियां एक समुदाय का निर्माण नहीं करती थी। ये जातियां आपस में शादी ब्याह अथवा खान–पान नहीं करती थी और अनिवार्य रूप से सामान्य रीति–रिवाजों का पालन नहीं करती थी। तृतीय, भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में पायी जाने वाली समान जातियों के बीच भी गहरा सम्बन्ध नहीं था।[4]

भारतवर्ष के उत्तरी–पष्चिमी क्षेत्र में काबुल, लाहौर, मुलतान और थट्टा के प्रान्त सम्मिलित थे। इस क्षेत्र में पष्चिम से पूरब की ओर जैसे हम बढ़ते है जनसंख्या जनजातीय संगठन से जातीय व्यवस्था की और झुकती है। पष्चिमी क्षेत्रों में, प्रधानतः पहाड़ी क्षेत्रों में जनजातियां मौलिक रूप से निवास करती थी और उनका स्वरूप मुख्यतः अर्द्वघुम्मकड़ प्रवृत्ति का था। जैसे–जैसे हम पूर्व की ओर बढ़ते है जनसंख्या व्यवस्थित एवं जातीयता से सम्मोहित प्रतीत होती है। इस क्षेत्र में मुख्यतः पठानों की आबादी थी। पठान आर्य समुदाय के थे और उनकी भाषा पस्ती रही है। इस क्षेत्र में दक्षिण में बलूचियों की प्रधानता थी। सिन्ध, राजपूताना एवं पंजाब में जाट तथा भिन्न–भिन्न राजपूत जातियां निवास करती थी इा क्षेत्र में गुर्जर भी एक मह्रत्वपूर्ण जाति थी और यह मुख्यतः कृषि कार्यो से सम्बन्धित थी। सामान्य तौर पर अफगानिस्तान से लेकर बिहार तक हिन्दू ही बहुमत में थे। उत्तर प्रदेश जो मुस्लिम सभ्यता एवं शासन का सदियों से केन्द्र रहा था वहां भी संख्या की दृष्टि से हिन्दुओं की ही प्रधानता थी। भारत में उन दिनों कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं था, जहां अनुपात में मुसलमानों की अपेक्षा जनसंख्या अधिक थी। मात्र बंगाल में उनकी जनसंख्या लगभग चौवन प्रतिशत थी। पष्चिमी

---

[3] पी0एन0 चोपड़ा, सोसाइटी एण्ड कल्चर डयूरिंग मुगल एज आगरा, 1956 पेज– 20–25

[4] मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टु औरंगजेग, लंदन, 1923, पेज7

भारत, मध्य भारत और दक्षिणी भारत में इनकी आबादी काफी कम थी। मध्य एवं दक्षिणी भारत में इनकी संख्या एक प्रतिशत से भी कम थी।

**1.3 हिन्दू समाज**

भारतीय समाज में संख्या की दृष्टि से सदा हिन्दुओं की प्रधानत रही है। मुगल काल में उनमें से अनेक समृद्व–प्रधान, व्यापारी–कृषक एवं नौकरी पेशे के लोग थे। इनमें से कृषकों की संख्या सबसे अधिक थी। देश के अधिकांश भूक्षेत्र के वे स्वामी थे और कोई भी राजनीतिक शक्ति चाहे वह कितनी भी शक्तिशाली क्यों न रही हो, हिन्दुओं के भारत में भूक्षेत्रीय स्वामित्व को समाप्त करने में असफल रही। राजस्व सम्बन्धी शासन–संचालन में मुसलमान शासकों को अनिवार्य रूप से हिन्दु अधिकारियों का सहयोग लेना पड़ा क्योंकि इस क्षेत्र में, उनको काफी अनुभव था और चौधरी, खूत तथा मुकद्दम के पदों पर सामान्य रूप से उन्हीं की नियुक्ति की जाती थी। अकबर के शासन काल से लेकर औरंगजेब के शासन काल के प्रारम्भिक दशक तक जब हिन्दुओं को धार्मिक उदारता के वातावरण में सांस लेने का अवसर मिला था, हिन्दुओं को ऊॅचे–ऊॅचे मनसब प्रदान किए गए और उन्हें शासन में वरिष्ठ पद भी प्राप्त हुए। किन्तु इसके पूर्व अथवा इसके पश्चात् उनकी स्थिति इस दृष्टिकोण से संतोषजनक नहीं कही जा सकती है। सामान्य तौर यह कहा जा सकता है कि एक जाति अथवा राष्ट्र के रूप में राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक, दृष्टिकोण से उनका ह्रास ही हुआ।[5]

हिन्दू समाज परम्परागत वर्ण–व्यवस्था एवं जातीय व्यवस्था पर आधारित था। यह परम्परागत चार प्रधान वर्णो में विभक्त था और जातियां अनेक उप–जातियों में बंटी हुई थी। चार प्रधान वर्ण थे – ब्राह्याण, क्षत्रिय, वैष्य एवं शूद्र। इन चारों में ब्राह्याणों की प्रधानता थी और समाज में उनका श्रेष्ठतम स्थान था। उनका मुख्य कार्य पूजा–पाठ, अध्ययन–अध्यापन, यज्ञ बलि आदि के कार्यो को सम्पादित करना तथा दान प्राप्त करना था। इस काल में उनकी प्रतिष्ठा एवं कार्यो में निष्चित रूप से परिवर्तन आया। इस काल तक बलि जैसे अनुष्ठान एवं यज्ञों में कमी आ गई थी और वे अपने यजमानों के यहां शादी–ब्याह, मृत्यु, जन्म अथवा धार्मिक अनुष्ठानों को सम्पन्न कर आपनी जीविका चलाते थे। किन्तु मात्र इससे जब उनका गुजारा नहीं होने लगा तो वे कृषि–व्यापार तथा नौकरी भी करने लगे। गुजरात के कुछ नायर ब्राह्याण, फारसी पढ़कर सरकारी अधिकारी भी बन गये थे।[6]

क्षत्रियों का समाज में दूसरा स्थान था। उनके कन्धों पर देश की सुरक्षा एवं सुव्यवस्था का भार था। अतः वे अधिकांशतः शासन, सेना एवं युद्व के कार्यो को सम्पन्न करते थें। क्षत्रियों के विषय में विद्वानों में मतभेद रहा है और यह निष्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, इस काल में भारत में इस वर्ण में कौन–कौन सी जाजियां थी। राजपूत, जाट, गुर्जर एवं मराठे इस वर्ग में माने जाते थे। क्षत्रियों के बाद सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से वैष्यों का स्थाना था। वैष्र कृषि, व्यापार, उद्योग तथा रूपये का लेन–देन आदि का काम किया करते थे। प्रारम्भ में इनकी गणना उच्च वर्ग में की जाती थी, किन्तु मध्यकाल में इनकी अवस्था में गिरावट आयी और इन्हें निम्न वर्ग में स्थान मिला। वर्ण–व्यवस्था में शूद्र निम्नतम स्तर के थे और इनका कार्य अपने से ऊपर के तीन वर्ण के लोगों की सेवा करना था। इस वर्ण में धोबी, शिल्पी, बुनकर, कुम्हार तथा कृषक आदि आते थे। जाति–बन्धन इन दिनों भी इतना कठोर था कि भक्ति काल अने उदार सन्तों के उपदेश भी इसकी जड़ को पूर्ण रूप से उखाड़ फेंकने में असमर्थ रहे। स्वण। जातियों के अतिरिक्त हिन्दू समाज में अछूतों का भी एक वर्ग था जिनमें डोम, चमार, चाण्डाल, कसाई तथा इसी तरह के अन्य जाति के लोग आते थे। इनकी अवस्था अत्यन्त दयनीया एवं किसी भी रूप में दास वर्ग के लोगों से अच्छी नहीं थी, हिन्दू समाज स्पष्टतः उच्च तथा निम्न दो स्तरों में विभक्त था। उच्च वर्ग के लोगों को अनेक राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक सुविधाएं थी। निम्न वर्ग के लोग यद्यपि संख्या से अधिक थे, वे अधिकांशतः आर्थिक कार्यो तथा सेवा के कार्यो में लगे रहते थे और उन्हें किसी तरह की सुविधा प्राप्त नहीं थी।

हिन्दू जातीय व्यवस्था इस काल में अत्यन्त जटिल हो गयी। जातियां अनेक उपजातियों में बटी हुई थी। ये उपजातियां विवाह, खान–पान आदि सामाजिक अनुष्ठानों के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण समझी जाती थी। उपजातियों में अनेक गोत्र के लोग रहते थे और समान गोत्र के लोगों के बीच विवाह निषिद्व था। निम्न जातियों में जातीय पंचायत की व्यवस्था थी, किन्तु उच्च जातियों में इस तरह की व्यवस्था का हम अभाव पाते है। इस समय कुछ नई उपजातियां भी पैदा हो गयी जैसे तोशखानी, काजी और खाना–कश्मीरी, ब्राह्याण जाति की उपजातियां, गुजराती ब्राह्याणों में मुन्शी तथा कायस्थों में कानूनगों और रायजादा आदि। इसी प्रकार देश के विभिन्न भागों में कायस्थ जाति की स्थिति पहले से अच्छी हो गयी थी। कायस्थ अध्ययन, अध्यापन के कार्यो में गहरी अभिरूचि रखते थे और वे अधिकतर लिपिक, सचिव तथा राजस्व अधिकारियों के पद पर बहाल किये जाते थे। धर्म–परिवर्तन की प्रक्रिया इस काल में भी गतिमान थी और कुछ निम्न जाति के हिन्दुओं विशेष रूप से बंगाल में, इस्लाम को स्वीकार किया और पंजाब तथा कश्मीर के कुछ उच्च जाति के हिन्दुओं ने इस धर्म को अपनाया। मुगल काल में हमें जाति–परिवर्तन के उदाहरण भी मिलते है। उदाहरण स्वरूप

---

5 जयशंकर मिश्र, ग्यारहवी सदी का भारत, वाराणसी, 1970, पृ0 205

6 कर्नल, जे0 टाड, एनल्स एण्ड एन्टीक्विटी ऑ राजस्थान, जिल्द 3

ब्राह्मणों का राजपूत जाति में तथा राजपूतों का जाट, गुर्जर तथा इनसे भी निम्न–स्तरीय लोहार, नापित आदि जातियों में परिवर्तन हुआ। मुगल शासकों ने जातीय व्यवस्था की मान्यता एवं सुरक्षा प्रदान की। जातियों एवं उपजातियों में बंटे रहने के बावजूद हिन्दुओं में परस्पर सहयोग एवं संगठन की भावना थी।[7]

सम्पूर्ण मध्यकाल में हिन्दु समाज लगभग गतिहीन ही रहा और नैतिक एवं भौतिक दृष्टि से इसमें गिरावट आई। अकबर के काल से लेकर औरंगजेब के शासन काल के प्रथम दशक तक हिन्दुओं ने धार्मिक स्वतंत्रता का लाभ उठाया, किन्तु इस काल के अतिरिक्त उन्हें धर्म के क्षेत्र में कठिनाइयां ही सहनी पड़ी। वस्तुतः सम्पूर्ण मुस्लिम शासन काल के हिन्दुओं ने अपने धर्म स्वतंत्रता एवं परिवार के आदर पर, जो मानव जाति के लिए ह्रदयप्रिय रहे हैं, हमेशा संकट का अनुभव किया। सर यदुनाथ सरकार ने हिन्दुओं के चारित्रिक पतन के लिए मुस्लिम शासन को दोषी ठहराते हुए कहा है, 'ऐसी सामाजिक परिस्थिति में हिन्दुओं का आध्यात्मिक विकास असम्भव एवं उच्च वर्ग के हिन्दुओं का नैतिक पतन अनिवार्य ही था। किन्तु यह विचार पूर्ण रूप से सत्य नहीं माना जा सकता क्योंकि मुगल काल में हिन्दुओं के मध्य तुलसीदास, मीराबाई, सूरदास, तुकाराम, मानसिंह, टोडरमल आदि जैसे अनेक सन्त, साहित्यकार, सुधारक एवं प्रशासक उपस्थित थे जिनकी योग्यता पर संदेह नहीं किया जा सकता है। इस काल में अनेक हिन्दू दार्शनिक, राजनीतिक एवं योद्वा आदि पैदा हुए जिनकी सराहना हम आज भी करते है। मुगलकाल में सामान्यतः हिन्दू अंधविष्वासी थे और उन्हें भाग्य अथवा शुभ–अशुभ आदि बातों पर गहरा विष्वास था। तत्कालीन विदेशी पर्यटकों के वर्णन से इस बात का पता चलता है कि हिन्दू सामान्यतः ईमानदार तथा अपने वचन के पक्के होते थे।[8]

### 1.4 मुस्लिम समाज

तुर्क–अफगान से ही भारतीय राजनीति की बागडोर मुसलमानों के हाथ रहती आयी थी, अतः समाज में अल्पसंख्यक होते हुए भी वे अत्यन्त प्रभावशाली बने रहे। मुगल–काल में वे दो वर्गो में बंटे थे – एक जो अरब, फारस अथवा दूसरे देशों से नौकरी या व्यापार के लिए इस देश में आए थे और दूसरे जो देश के वासी थे और उन्होंने अथवा उनके पूर्वजों ने विभिन्न कारणों से इस्लाम को स्वीकार कर लिया था। विदेशी मुसलमानों की अपेक्षा भारतीय मुसलमानों की संख्या अधिक थी, किन्तु प्रशासन समाज एवं अर्थव्यवस्था में वे असुविधा में हीन थी। विदेशी मुसलमानों में अरबी, तुर्की, फारसी, मंगोलियन एवं उजबेगों के अतिरिक्त आर्मेनियन तथा हब्शी भी थे। इनमें जो वाणिज्य–व्यापार हेतु इस देश में आए वे समुद्री तटों पर बस गये और जो नौकरी के उददेष्य से आये उनमें से अधिकांश उत्तर भारत में जा बसे थे। इनमें से अनेक दक्षिण के अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा के शाही दरबार में भी नौकरी करते थे। मुगल दरबार में सामान्यतः विदेशी मुसलमान ही प्रतिष्ठित थे।

भारत में मुसलमान सुन्नी, शिया, बोहरा और खोजा आदि विभिन्न सम्प्रदायों में विभक्त थे। इनके बीच, विशेषकर शिया और सुन्नियों के बीच काफी मतभेद और विरोध रहता था। इस देश में शियाओं की तुलना में सुन्नी बहुसंख्यक थे और लगभग सम्पूर्ण मध्यकाल में इनका आपसी विरोध बना रहा। मुगल सम्राट उनके इस आपसी विरोध से परिचित थे, अतः प्रशासन के लिए समस्या न बन बैठे, वे कभी एक और झुक जाते थे तो कभी दूसरी ओर, जिससे उनके बीच सन्तुलन स्थापित रहे। अफगान मुगलों के जानी दुष्मन थे क्योंकि वे उन्हें अपनी शक्ति का अपहरणकर्ता समझते थे।[9]

पेशे की दृष्टि से मुस्लिम समाज दो वर्गो में विभक्त था 'कलम के व्यक्ति' तथा 'तलवार के व्यक्ति'। प्रथम वर्ग के लोग लिपिक, धार्मिक तथा शैक्षिक पेशों में लगे हुए थे। इस वर्ग में उलेमा की प्रधानता थी जो प्रधानतः धर्मत्तवज्ञ, कलीसीयाई, शिक्षक एवं न्यायिक पदों पर होते थे। भारतीय राजनीति एवं मुस्लिम समाज पर इनका काफी प्रभाव था। दूसरे वर्ग के लोग भी अत्यन्त महत्वपूर्ण थे जो सैनिक गतिविधियों में संलग्न रहते थे।

मुगल सम्राटा एवं उसके परिवार के सदस्यों का समाज में श्रेष्ठतम स्थान था। सम्राट के राजनीतिक एवं आर्थिक अधिकारी असीमित थे। सामन्तों का स्थान समाज में सम्राट के बाद आता था। इस वर्ग में विदेशी मुसलमानों की ही प्रधानता थी और मुगल राजनीति एवं प्रशासन में वे अत्यन्त प्रभावशाली थे। किन्तु उनका पद वंशानुगत नहीं होता था। एक सामन्त की मृत्यु के पश्चात् उसकी सम्पत्ति पर सरकार का अधिकारी हो जाता था। इस वर्ग के सदस्यों के बीच समरूपता की नितान्त कमी थी और यह वर्ग सुव्यवस्थित भी नही था। इन कमजोरियों के कारण यह वर्ग अत्यन्त प्रभावशाली होते हुए भी देश के लिए लाभदायक साबित नहीं हो सका।[10]

---

[7] जी0एस0 घूर्या, कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया, न्यूयाके, 1950, पृ0 45

[8] ताराचन्द, सोसाइटी एण्ड स्टेट इन मुगल पीरियड, दिल्ली, 1961, पेज–65

[9] पी0एन0 चोपड़ा आपसिट, पेज–43

[10] यदुनाथ सरकार, फाल ऑफ दि मुगल एम्पायर, जिल्द–4, कलकत्ता, 1950 पेज–120.25

उलेमा वर्ग के लोग धर्मतत्त्वज्ञ होते थे और भारतीय राजनीति एवं मुस्लिम समाज पर इनका काफी प्रभाव था। सामन्त वर्ग की तुलना में यह वर्ग अपने अधिकारों एवं प्रभावों के प्रति सचेत और संगठित था। देश में न्याय सम्बन्धी पदों तथा धार्मिक एवं शैक्षणिक नौकरियों पर उनका प्रायः एकाधिकार था। इनमें से अनेक इमाम, मुहतसीब, मुफ्ती तथा काजी के पदों पर नियुक्त थे और कुछ धर्म–प्रचार में लगे हुए थे। मुगल प्रशासन पर तुर्क–अफगान काल की तरह उलेमा वर्ग का यथेष्ट प्रभाव था और सम्राट उनसे समय–समय पर सलाह लिया करते थे। किन्तु देश, राजनीति, प्रशासन अथवा धर्म पर उलेमा के प्रभुत्व का हानिकारक प्रभाव पड़ा। निःसन्देह उलेमा विद्वान होते थे, पर यह आवष्यक नहीं था कि वे सफल राजनीतिक भी हों। वस्तुतः वे प्रधान रूप से सैद्वांतिक एवं आदर्शवादी होते थे, अतः राजनीतिक समस्याओं के प्रति उनका दृष्टिकोण संकीर्ण एवं सीमित होता था। ये सम्राट की धार्मिक नीति को रूढ़िवादी एवं अनुदार बनाते और उसे अधिक उलझा देते थे। भारत में मुस्लिम शासन को लोकप्रिय बनाने में इस वर्ग का महत्वपूर्ण हाथ रहा है।

उपर्युक्त मुसलमानों को छोड़कर भारत के अन्य सभी मुसलमान साधारण वर्ग में आते थे। इनकी प्रशासन में कोई भागीदारी नहीं थी। मुस्लिम समाज का यह निम्नतर वर्ग मुख्यतः शिल्पी, दुकानदार, लिपिक, छोटे–छोटे व्यापारी, नौकर–चाकर तथा मुस्लिम कृषकों द्वारा निर्मित था। इनके अतिरिक्त नापित, धोबी, दर्जी, चूड़ीहारे, नाव–चालक, कसाई, घसियारे, ढोलकची, फकीर आदि भी इसी वर्ग में आते थे। मुबल काल तक धर्मपरिवर्तित मुस्लिम जनसंख्या में काफी वृद्वि हो चुकी थी। इस वर्ग को मुगल प्रशासन में अथवा समाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में कोई सुविधा प्राप्त नहीं थी। इनमें से कुछ ऐसे भी थे जो हिन्दू जाति की कुछ समानता अभी तक रखे हुए थे।[11]

### 1.6 भारतीयों का सामाजिक जीवन स्तर

सम्पूर्ण मध्यकाल की तरह मुगलकाल में भी भारतीय समाज सामन्तवादी व्यवस्था पर आधारित था। समाज जीवन–स्तर के दृष्टिकोण से दो वर्गो में बंटा हुआ था – उच्च वर्ग और साधारण वर्ग। उच्च वर्ग में सम्राट, उसके परिवार के सदस्य, अमीर–उमरा एवं उच्च पदाधिकारी आते थे। सम्राट का स्थान समस्त भारत में सर्वोच्च था। तुर्क–अफगान काल के सुल्तानों की तुलना में इनका जीवन और रहन–सहन वैभवशाली एवं आकर्षक था। मुगल सम्राटों को नगर–जीवन प्रिय था औरन उनके काल में लाहौर, दिलली, आगरा और फतेहपुर सीकरी जैसी नगर अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गये। दिल्ली तथा आगरा मुगलों की राजधानी थी। वे स्थाई नगरों में अथवा चलते–फिरते अस्थाई नगरों में रहना ही पसन्द करते थे। उनकी रंगीनियां की व्यापकता तथा विशालता का विदेश पर्यटकों ने आष्चर्यचकित होकर वर्ण किया है। उनके खेमें जीवन की सभी सुख–सुविधाओं से सम्पन्न तथा परिपूर्ण होते थे। इनकी सजावट एवं सम्पन्नता को देखकर विदेशाी आष्चर्यचकित रह जाते थे। खेमों में सम्राट के दैनिक जीवन के सभी सामान, स्त्रियां, दास–दासियां, अनेक रानियां तथा देश–विदेश की विलासिता की सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध रहती थी। सम्राट के साथ सैनिक टुकड़ियां तथा घोड़े, हाथी, फालकी जैसी सवारियां भी रहती थी। मुगलों पर फारसी सभ्यता का गहरा प्रभाव था। अतः मुगल दरबार में फारसी दरबार का अनुकरण किया जाता था। विदेशी मदिरा, विदेशी फल अथवा बहुमूल्य वस्तुओं की मुगल दरबार में भरमार रहती थी। राजदरबार में वैभव तथा ऐष्वर्य की प्रधानता थी। औरंगजेब को छोड़कर प्रायः समस्त मुगल सम्राट वस्त्रों तथा आभूषणों का साज श्रंगार पसन्द करते थे। शाहजहां के शासन काल में मुगल दरबार में हम वैभव तथा ऐष्वर्य की पराकाष्ठा पाते है। सम्राट के वस्त्र अत्यन्त कीमती, भड़कीले और आकर्षक होते थे। उसके शरीर पर कीमती आभूषणें की भरमार रहती थी। सम्राट के खाने–पीने के सामाना अथवा पात्र भी उसकी वैभवशीलता के अनुकूल होते थे। दशहरा, दीपावली, ईद और रवरोज जैसे पर्व मुगल दरबार में धूम–धाम के साथ मनाये जाते थे। इन अवसरों पर दरबार की शोभा देखने लायक रहती थी। जन्म–दिन, राज्यभिषेक और विवाह के अवसरों पर पैसे पानी की तरह बहाए जाते, दान, जुलूस, नृत्य और संगीत तथा दावत की बाढ़ सी आत जाती थी और दरबार की शोभा में चार–चांद लग जाते थे। दरबार में इन अवसरों पर जष्न मनाया जाता था और दावतें दी जाती थी। दावतों में असाधारण व्यजंन तैयार किए जाते थे तथा शराब पेश की जाती है। सम्भवतः औरंगजेब ही मुगल शासकों में ऐ ऐसा अपवाद था जिसे शराब की लत नहीं थी। अकबर भी कभी–कभी ही शराब पीता था किन्तु अन्य सभी मुगल सम्राट इसके लिए विख्यात थे। प्रायः सभी मुगल सम्राट अपनी विलासिता के लिए प्रसिद्व थे। राजभवन में रनिवासों पर काफी खर्च किया जाता था। इनमें विवाहित रानियों के अतिरिक्त सैकड़ो रक्षिकाएं होती थी। अकबर के रनिवास में स्त्रियों की संख्या लगभ पांच हजार थी। शाहजहां के शासन काल में इनकी संख्या में और वृद्वि हुई। सम्राट और राजकुमार भोग–विलास में लिप्त रहते थे। मुगलों की देखा–देखी राजपूत शासकों में भी विलासिता आ गई थी और उनके रनवासों में भी सैकड़ो की संख्या में स्त्रियां रहती थी। दरबार तथा राजमहल पर प्रतिवर्ष करोड़ों रूपये खर्च किए जाते थे। इस्लामी आदर्श के अनुसार शासक पिता के समान है। उनका चरित्र प्रजा के लिए अनुकरणीय है और प्रजा का हित उसका कर्तव्य है। मुगल सम्राटों ने

[11] ए0एल0 श्रीवास्तव, मेडिवल, आपसिट, पेज–230–32

न तो इस्लाम के आदर्शो का माना और न ही हिन्दुओं की कार्य–पद्यति को स्वीकार किया। मुगल सम्राटों के चरित्र का यह नकारात्मक पक्ष है।[12]

सम्राट के ठीक नीचे अमीर–उमरा, हिन्दू सामन्त तथा उच्च सरकारी अधिकारी वर्ग के लोग आते थे। इस वर्ग के लोग विविधक श्रेणी के मनसब पद या ओहदा प्राप्त कर राज्यप्रशासन और समाज में प्रभावशाली हो गये थे। ये भी कम विलासी और आराम–तलब नहीं थे। सम्राट का अनुकारण कर ये अपने हमर में बड़ी संख्या में स्त्रियों, नर्तकियों एवं दासियों को रखते थे। इनके पास धन की कमी नहीं थी, इसलिए ये भी सम्राट की तरह ठाट–बाट से रहते थे तथा अपने खान–पान, रहन–सहन तथा वेशभूषा और महलों पर धन का अपार व्यय करते थे। ये लाग शराब, जुआ एवं विलासित जैसे दुर्गुणों का शिकार होकर रह गये थे। इनके बीच भी विशेष अवसरों पर दावतों का दौर चलता था ओर लोग शराब एवं नांच–गानों में खो जलाते थे। हालांकि इनमें दोनशीलता, आम्तसम्मान, विद्वता अथवा विद्वानों एवं सन्तों के प्रति सम्मान की भावना तथा कलाप्रियता जैसे गुणों की भी कमी नहीं थी, किन्तु गुणों की तुलना में इनमें दोषी की भरमार थी। इनके विषय में तत्कालीन यूरोपीय पर्यटक अपना विचार व्यक्त करते हुए कहते है कि 'जितने ठाट–बाट से भारत के कुछ अमीर रहते है उतने ठाट–बाट से यूरोप के शासक भी नहीं रहते।' इस वर्ग के लोग अपनी फिजूल खर्ची के लिए विख्यात थे। उनकी फिजूलखर्ची का एक बड़ा कारण यह था कि उनकी सम्पत्ति उनकी मृत्यु के बाद राज्य के द्वारा छीन ली जाती थी। मनसबदारी वंशानुगत नही थी। अतः ये मनसबदार अपने जीवन काल में ही अपनी अर्जित सम्पत्ति को खर्च कर देते थे। धन–ऐष्वर्य की प्रचुरता ने सामन्तों को अकर्मण्य बना दिया था। सर यदुनाथ सरकार ने मुगल कालीन सामन्तों के पतन की चर्चा करते हुए कहा है कि इस काल में सामन्तों का चारित्रिक पतन विचित्र गतिविधियों के कारण था। प्रायः सामन्तों के पुत्र अयोग्य होते थे। सामन्तों के बीच संयमशीलता तथा सच्चरित्रता की कमी के कारण उनकी संतति भी बुरी होती चली गयी। उनके बच्चे किशोरावस्था से ही विलासी एवं अपव्ययी होने लगे और उनमें प्राकृतिक गुणों का विकास नहीं हो पाया। सामन्तों की सैनिक और प्रशासनिक योग्यता घटती चली गयी। उत्तर मुगकालीन भारत में सामन्तों के बची रहीमख महावत खां, सादुल्ला खां, मीर जुमला, इब्राहीत खां अथवा इस्लाम खां आदि जैसा कोई भी व्यक्ति पैदा नहीं हो सका। जब वे खुद अपनी सुरक्षा करने में असमर्थ हो गए तो वे देश की सुरक्षा कैसे कर सकते थे। सम्राट एवं साम्राज्य के प्रति उनमें स्वामिभक्ति की भावना समाप्त हो गयी। इस काल में अमीरों का चारित्रिक पतन मुगल साम्राज्य के पतन का एक प्रमुख कारण बना।[13]

निम्न वर्ग में किसान, कर्मकार या शिल्पी, मजदूर, सेवक तथा सामान्य जनता आती थी। साधारणतः उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी किन्तु उन दिनों वस्तुओं का मूल्य कम होता थो, अतः पैसे से ही व्यक्तियों का जीवन–निर्वाह सम्भव हो जाता था। प्रथम दो वर्गो की तुलना में खान–पान, रहन–सहन, आवास अथवा पोशाक की इन्हें नितान्त कमी रहती थी और कठिनाई से इनका समय व्यतीत होता था। हिन्दू अधिकाशतः गांवों में रहते थे और कृषि उनकी जीविका का मुख्य साधन था। मजदूरों के वेतन की दर काफी कम थी। वे किसी तरह से अपना जीवन–निर्वाक किया करते थे। मुसलमान शहरों में रहना पसन्द करते थे और मजदूरी अथवा छोटी–मोटी नौकरी के क्षरा अपना जीवन–यापन किया करते थे। बुनकर, धोबी, बढ़ई, हजाम, कारीगर और नौकरी–चाकर अपने पेशों से अथवा प्रथम दो वर्गो के यहा सेवा कार्य कर अपना जीवन–निर्वाह किया करते थे। इस वर्ग में छोटे–छोटे व्यापारी और दुकानदासर भी थे जिनकी अवस्था दूसरों से कुछ अच्छी थी। इस वर्ग के लोग सामान्यतः सन्तुष्ट और कष्ट सहने के आदी होते थे।[14]

मुगल काम में दास–प्रथा भी प्रचलित थी। यह प्रथा हिन्दू और मुसलमान दोनों के बीच समान रूप से प्रचलित थी। हिन्दुओं के बीच दास उपहार के रूप में सगे–सम्बन्धियों तथा मित्रों के बीच बांटे जाते थे। विजयनगर के हिन्दू साम्राज्य में इस प्रथा को मान्यता थी। हिन्दुओं की तुलना में मुसलमानों के बीच यह प्रथा और अधिक लोकप्रिय थी। मुस्लिम सामन्तों का जीवन युद्व तथा आनन्द दो भागों में विभक्त था। किन्तु वे अपना अधिकांश समय आनन्द में ही व्यतीत करते थे। सम्राट और सामन्त बड़ी संख्या में पुरूष एवं स्त्री दास रखते थे। दास समाज के दूसरे वर्ग के लोगों के द्वारा भी गृह कार्यो अथवा कारखानों में काम करने के लिए रखे जाते थे। किन्तु दासों के साथ सद्भावना तथा उदारता का व्यवहार किया जाता था। आसाम के दास अपने हष्टपुष्ट शारीरिक गठन के कारण लोकप्रिय थे। भारत में स्त्री तथा पुरूष दास चीन, ईरान तथा टर्की से भी आयात यिए जाते थे। स्त्रियां दो उददेष्य से दास बनायी जाती थी – गृहकार्यो के लिए तथा भोगविलास के लिए। दूसरे उददेश के स्त्री दासों का मूल्य काफी अधिक था। भारत से भी दासों का विशेषतः स्त्री दासों का निर्यात चीन आदि देशों में कियजा जाता था और कभी–कभी मिस्र देश के शासकों को भी स्त्री –दास उपहार के रूप में भेंट दी जाती थी।[15]

---

12 ए0 रशीद, सोसायटी एण्ड कल्चर इन मेडिवल इण्डिया, कलकत्ता, 1969 पेज–22

13 मोहम्मद यासीन, सोशल हिस्ट्री ऑफ इस्लामिक इण्डिया, लखनऊ, 1958, पेज–6

14 एस0एम0 युसूफ, सम एस्पेक्टस ऑफ इस्लामिक कल्चर, पेज–131–135

15 मोहम्मद यासीन, आपसिट, पृ0 85

### 1.7 नगरीय एवं ग्रामीण जीवन

सोलहवी और सत्रहवी सदी में जो विदेश पर्यटक और व्यापारी भारत आये उन्होंने उस समय के नगरों के जीवन का विवरण अपने संस्मरणों में दिया है। मनूची औरंगजेब के शासन काल में भारत में आया था उसने आगरा से ढाका की ओर पुनः ढाका से आगरा की यात्रा की थी। वह मुगल अधिकारी भी बन गया था। हेमिल्टन भी औरंगजेब शासन के उत्तरार्द्व में भारत आया, उसने भी जगन्नाथपुरी से कटक तक की यात्रा की थी। ओविन्गटन सन् 1692 में अंग्रेज फैक्ट्री में अधिकारी था इन तीनों ने ही अपनी यात्रा संस्मरण लिखे है। उनके अनुसार नगर का जीवन सम्पन्न और समृद्व था। यद्यपि नगर में पक्के ईट व पत्थर के मकान बने थे, पर कच्चे मिट्टी के गारे के मकानों का बाहुल्य था। मकान प्रायः हवादार और खुले होते थे। उनमें पानी का अभाव नहीं था। अनेक मकानों में खुलें आंगन होते थे। प्रायः मकान के दो भाग होते थे। – एक परिवार की महिलाओं के लिए, दूसरा पुरूषों के लिए। मकान के भीतर व्यापकता होती थी। सम्पन्न और समृद्व परिवारों के मकानों में उद्यारन होते थे और भीतर काफी व्यवस्था होती थी। उनमें एक बड़ी बैठक होती थी जिसे 'दीवानखाना' कहते थे। प्रातः परिवार का प्रमुख या गृहस्वामी या सामंत अपने नित्यकर्म से निवृत होकर उसमें आकर बैठता था और अपना प्रतिदिन का कार्य प्रारम्भ करता था। उसके अधीनस्थ कर्मचारी भी वहां उपस्थित होकर उसे अभिवादन कर उसके आदेशों की प्रतीक्षा खड़े रहकर करते थे। यदि कोई अतिथि या आगन्तुक उनसे भेंट करना चाहते थे तो उनके नामों की घोषणा पहले करके उन्हें पेश किया जाता था। अभिवादन करने के पश्चात् दायें या बायें पंक्ति में उनके सम्मान के योग्य स्थान पर वे खड़े कर दिये जाते थे। उसके बाद उनसे बातचीत होती थी। गृहस्वामी या अमीर के वार्तालाप में, भाषा की बड़ी गम्भीरता और मधुरता होती थी, उपस्थित व्यक्ति भी ने तो कोई शोर करते और न किसी भी प्रकार की हलचल ही। ओविन्गटन के विवरण के अनुसार बड़े–बड़े नगरों में हम्माम (स्नानगार) होते थे। नगर की सड़कों को प्रतिदिन मेजतरों द्वारा साफ किया जाता था। अनेक लोग प्रायः अष्वों पर और पालकियों में बैठर आते जाते थे। पालकी की कहार उठाते थे। उच्च अधिकारी और अमीरों की पालकी के एक ओर एक सेवा पीकदान उठाये चलता था, तो दूसरी ओर पालकी में बैठने वाले व्यक्ति के लिए दो व्यक्ति मोर पंखों का पंखा लिये हवा करते चलते थे। तीन या चार पैदल सेवक पालकी के आगे–आगे रास्ता बनाते हुए भीड़ या लोगों को अलग करते हुए चलते थे। पालकी के पीछे सुरक्षा के लिए कुछ चुने हुए अष्वारोही चलते थे। शहर में उत्सव व त्यौहार भी बड़ी शान–शौकत से मनाये जाते थे। इनमें ईद व मुहर्रम का त्यौहार विशेष उल्लेखनीय है। मुहर्रम के अवसर पर शहरों में ताजिये निकाले जाते थे कभी–कभी शिया और सुन्नियों में झगड़े भी हो जाते थे। नगरों में विवाह भी बड़ी धूम–धाम से होते थे। इस अवसर पर शानदार दावतों के बाद नृत्य और संगीत की प्रधानता रहती थी। कुछ विवाह–उत्सवों में फारसी में संगीत होता था। फारसी भाषा के कुछ ऐसे भी संगीतज्ञ थे जिनके पूर्वज फारस से भारत में आये थे और अमीरों व बनसबदारों के यहां और राजदरबारों में संगीतज्ञ का पेशा अपनाये हुए थे।[16]

### 1.8 ग्रामीण जीवन

नगरों की अपेक्षा गांवों का जीवन अधिक सादगीपूण्र था पर साधरणतया लोग गरीबी में ही रहते थे। मुगल काल में ग्रामीण समाज में मोटे रूप में तीन वर्ग थेः पहला वर्ग 'खुदकाष्त' जिन्हें मुगल दस्तावेजों में 'मालिक ए जमीन' भी कहा जाता था। देश के भिन्न–भिन्न भागों में इन्हें विभिन्न नामों से पुकारा जाता था। जैसे राजस्थान में 'घरूहला' अथवा 'गवेटी' और महाराष्ट्र में 'मिरासी' या 'थलवाहिक'। जिस भूमि को ये जात्ते बोते थे या काष्त करते थे उनके ये मालिक होते थे। दूसरे वर्ग में 'पाही' अथवा 'ऊपरी' काष्तकार थे जो दूसरे गांवों में खेती करने आते थे और वहां अपनी झोपड़ियॉ बना लेते थे। इनके पास अपने हल और बैल नहीं होते थे और ये खुदकाशत किसानों एवं जमीदारों के खेतों पर काम करते थे। तीसरा वर्ग मुजारियान अर्थात बटाईदारों का था, जो खुदकाष्त करने वाले किसानों से जमीन भाड़े पर ले लेते थे। एक वर्ग उन भूमिहीन किसानों का भी था जो कृषकों की आवष्यकताओं की पूर्ति करता था और उनकी सेवा के एवज में फसल कटाई के समय उपज का एक निष्चित भाग दिया जाता था। इनमें धोबी, चमार, कुम्हार आदि थे।[17]

राजस्थान में ब्राह्ाण, क्षत्रिय या राजपूत और वैष्य अथवा महाजन रियायती दर पर भू–राजस्व देते थे। गांव के अधिकारी जैसे चौधरी, मुकदमें आदि की भूमि से भी रियायती दर पर राजस्व वसूल किया जाता था। गांव में अनेक असमानताये थी। बाबर ने लिखा है कि किसान वे निम्न श्रेणी के लोग अक्सर नंगे पैर ही रहते है। अबुल फजल ने लिखा है कि बंगाल के साधारण वर्ग के लोग

---

[16] पी0एन0 चोपड़ा, आपसिट, पृ0 52

[17] ए0 रशीद, आपसिट, पृ0 42

ज्यादातर नंगे ही रहते है, और अपने शरीर के मध्यम भाग को ढ़कने के लिए केवल एक लुंगी पहनते है। राल्फ फिच अधिक स्पष्ट करते करते हुए लिखता है कि ''केवल शरीर के मध्य भाग को ढ़कने के अतिरिक्त साधारण वर्ग अधिकतर नंगे बदन ही रहता है।

इस प्रकार हम देखते है कि कम वस्त्र पहनने के तथ्य पर विदेशी यात्रियों ने ज्यादा जोर दिया है हालांकि वस्त्रों की तंगी का एक बड़ा कारण आर्थिक स्थिति तो रही लेकिन इसमें भारत की जलवायु और सामाजिक मान्यताओं जैसे तत्व भी महत्वपूर्ण कारक थे। यद्यपि उन दिनों में कपास का उत्पादन और बुनकरी उद्योग व्यापक पैमाने पर होता था लेकिन गेहूँ की तुलना में कपड़ा महंगा था। यह तथ्य शिरीन मसूबी द्वारा मध्यकालीन भारत की अर्थव्यवस्था के संदर्भ में सन् 1595 के लिए दिये गये आंकड़ों से भी सिद्व होता है। स्त्रियां अधिकतर सूती साड़ी पहनती थी। मोरलैण्ड के अनुसार स्त्रियॉ कोई चोली या अंगिया नहीं पहनती थी लेकिन ऐसा केवल मालाबार क्षेत्र में होता था क्योंकि वहां स्त्रियों द्वारा स्तनों को ढकने की परंपरा नहीं थी लेकिन अन्य क्षेत्रों में ग्रामीण स्त्रियॉ चोली या अंगिया पहनती थी। कुछ पष्चिमी और मध्य क्षेत्रों में स्त्रियां साड़ी के स्थान पर लहंगा और शरीर के ऊपरी भाग पर चोली पहनती थी। गांवों में रहने वाले निर्धन लोगों में जूते पहनने का रिवाज लगभग नहीं था। मोरलैण्ड का कहना है कि उसने नर्मदा के उतत्र में केवल बंगाल को छोड़कर कहीं पर जूते पहनने को रिवाज नहीं सुना। उसके विचार में इसका कारण चमड़ा अधिक महंगा होना था। इतिहासकार सतीशचन्द्र हिन्दी कवियों, सूरदास और तुलसीदास की कृतियों के आधार पर बताते है कि शायद जूते के लिए 'पनही' और 'उपनाहा' शब्द का प्रयोग होता था जो सम्भवतः गांगव के सम्पन्न लोगों द्वारा उपयोग में लिए जाते थे। किसानों में स्त्री तथा पुरूष दोनों ही आभूषण पहनने के शौकीन थे। स्त्रियॉ विशेषकर पैरों की ऊँगलियों में चादी तथा तॉबे के छल्ले पहनती थी। राल्फफिच ने पटना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि यहां स्त्रिया चॉदी और तॉबा पहनती है कि देखने में अजीब लगता।

### 1.9 निष्कर्ष

ग्रामीण घरों में काफी क्षेत्रीय भिन्नतायें होती थी जोकि स्थानीय वस्तुओं और सामान की प्राप्ति के आधार पर निर्भर करती थी। बंगाल में झोपड़ी बनाने के लिए बांसो तथा आसाम में लकड़ी, बांसों और फूस को प्रयोग किया जाता था। कश्मीर में लकड़ी के घर बनते थे। उत्तर ओर मध्य भारत में घर बनाने का प्रमुख सामान मिट्टी और भूसे का मिश्रण था। दक्षिण में झोपड़ियां बनाने के लिए ताड़ की पत्तियों का प्रयोग होता था। गुजरात व मालवा मे छत खपरैल की होती थी जिन्हें 'केवलू' कहा जाता था। कभी–कभी तो ऐसा होता था कि गरीब किसान एक ही कमरें में अपने पशुओं के साथ ही रहता था। दूसरी ओर गांव के धनी वर्ग के लोग कई कमरों वाले पक्के घरों में रहते थे। इन घरों में कई कमरों के अतिरिक्त अनाज रखने के लिए अलग स्थान और चार दीवारी में घिरे आंगन भी होते थे।[18]

भोजन के बारे में प्राप्त विवरण से पता चलता है कि चावल, दाल, ज्वार और बाजरा किसानों के प्रमुख आहार थे। बंगाल, उड़ीसा, सिन्ध और कश्मीर में चावल मुख्य आहार था जबकि राजस्थान गुजरात और मालवा में ज्वार और बाजरा प्रमुख खाद्यान्न थे। इरफान हबीब का कहरना है कि किसान अपने परिवार के लिए निम्नतम किस्म के अनाज का ही उपभोग करता था। आगरा और दिल्ली के बीच का क्षेत्र जो गेहूँ की उपज के लिए विख्यात था, वहां भी किसान गेहूँ खाने में असमर्थ था। अनाज के अतिरिक्त लोग शाक, फलियॉ तथा अन्य सब्जियॉ भी खाते थे। ट्रेवनियर के अनुसार ये चीजे छोटे से छोटे गांव में भी बिकती थी। बंगाल और तटीय प्रदेशों में लोग मछली खाते थे। अनाज की अपेक्षा तेल और घी सस्ता था और उत्तरी भारत, बंगाल और पष्चिमी भारत में उनका व्यापक प्रयोग होता था। नमक पर सरकार का एकाधिकार था और यह गेहूँ से भी महंगा था। आमतौर पर गांवों में गुड़ खाया जाता था। मुकुन्दराम ने लिखा है कि दही तथा दूध से बनी सस्ती मिठाईयॉ स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ थे, जिनको गरीब केवल उत्सवों एवं त्यौहारों के अवसर पर ही खा सकते थे। इसके विपरीत ट्रेवर्नियर का कथन है कि चीनी तथा मिठाईयां छोटे से छोट गांवो में भी बहुतायत में मिलती थी। मसालों में धनिया तथा अदरक का उपयोग अधिक था परन्तु इलायची, लौग तथा कालीमिर्च अधिक महंगी होने के कारण निर्धन वर्ग के लिये इनका उपयोग करना कठिन था। फलों में आम, तरबूज, नारियल आदि मौसम में ही खाये जाते थे।

अकाल तथा महामारी ग्रामीण जीवन के लिये दो अभिशाप थे। अनाव्रष्टि तथा अतिवृष्टि के कारण बार–बार अकाल पड़ना बड़ी ही साधारण घटना थी। 1554–1556 के बीच आगरा, बयाना और दिल्ली के आस–पास का क्षेत्र अकाल ग्रस्त हो गया और इसी प्रकार 1572–73 में सिन्ध में अकाल पड़ा। 1565 तथा 1574–75 में गुजरात अकाल से प्रभावित हुआ। मोरिस का कथना है कि किसान ऐसे समय के लिए खाद्यन्न सुरक्षित रखते थे। राज्य भी तकाबी र्णि बॉटता था। अकाल की भीषणता के समय साधारण आदमी सूखी घास खाने के लिये मजबूर थे। बड़े क्षेत्र में अकाल पड़ने पर महामारी भी फैलती थी जिससे ग्रामीण लोग बड़ी संख्या में गांवों को छोड़कर कम प्रभावित क्षेत्रों में चले जाते थे और इस प्रकार गॉव के गांव वीरान हो जाते थे।

[18] अशरफ, आपसिट, पेज–195

उपरोक्त विवरण और अनेक इतिहासकारों के मतों एवं तथ्यों के आधार पर यह कहा जात सकता है कि मुगलकाल में किसानी जीवन गरीबी के बावजूद सन्तोषजनक था। गांव एक व्यवस्थित जीवन का प्रतीक था जहाँ खुशिया एवं कठिनाईयां बड़े ही धैर्य से स्वीकार्य थी।

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. डब्ल्यू0एच0 मोरलैण्ड, दि अग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुस्लिम इण्डिया, कैम्ब्रिज 1929, पेज–84
2. के0एम0 अशरफ, लाइफ एण्ड कण्डीशन ऑफ दे पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, दिल्ली, 1959, पेज–165
3. पी0एन0 चोपड़ा, सोसाइटी एण्ड कल्चर डयूरिंग मुगल एज आगरा, 1956 पेज– 20–25
4. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, मेडिवल इण्डियन कल्चर, आगरा, 1964, पेज–27
5. मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टु औरंगजेग, लंदन, 1923, पेज7128
6. ए0एल0 श्रीवास्तव, दिल्ली सल्तनत, पृ0 578–79
7. जयशंकर मिश्र, ग्यारहवी सदी का भारत, वाराणसी, 1970, पृ0 205
8. कर्नल, जे0 टाड, एनल्स एण्ड एन्टीक्विटी ऑ राजस्थान, जिल्द 3
9. जी0एस0 घूर्या, कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया, न्यूयाके, 1950, पृ0 45
10. ताराचन्द, सोसाइटी एण्ड स्टेट इन मुगल पीरियड, दिल्ली, 1961, पेज–65
11. यदुनाथ सरकार, फाल ऑफ दि मुगल एम्पायर, जिल्द–4, कलकत्ता, 1950 पेज–120.25
12. ए0एल0 श्रीवास्तव, मेडिवल, आपसिट, पेज–230–32
13. मोहम्मद यासीन, सोशल हिस्ट्री ऑफ इस्लामिक इण्डिया, लखनऊ, 1958, पेज–6
14. ए0 रशीद, सोसायटी एण्ड कल्चर इन मेडिवल इण्डिया, कलकत्ता, 1969 पेज–22
15. एस0एम0 युसूफ, सम एस्पेक्टस ऑफ इस्लामिक कल्चर, पेज–131–135
16. इरफान हबीब, दी एग्रेरियन सिस्टम ऑफ दी मुगल्स, बम्बई, 1963, पेज–94
17. उद्वत हरिशचन्द्र वर्मा, संपादक, मध्य कालीन खण्ड–2 (1540–1761), प्रथम संस्करण, 1963 हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विष्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित पेज–443
18. फ्रेंकोस, पेल्सर्ट, जहांगीर्स इण्डिया, अनुवाद डब्लू0एच0 मोरलैण्ड तथा पी0गल0, दिल्ली, 1925
19. ताराचन्द, इन्फ्लुएन्स ऑफ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर, इलाहाबार, 1963
20. अवध बिहारी पाण्डेय, पूर्व मध्यकालीन भारत पृ0 240ः लेटर मेडिवल इण्डिया, पृ0 12–13
21. ईष्वरी प्रसाद, लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ हुमायूँ, कलकत्ता, 1956, पृ0 202
22. जे0 चौबे, हिस्ट्री ऑफ गुजरात किगंडम, नई दिल्ली, 1975, पृ0 275
23. कर्नल टाड, एनल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान, जिल्द 3, ऑकसफोर्ड, 1920, सम्पादित – क्रूक, पृ0 364–65